

भारत ने बढ़ाया वैश्विक तापमान; आईआईटी खड़गपुर के अध्ययन ने ऊर्जा के साथ खेती को भी बताया जिम्मेवार

मुंबई। भारत का औद्योगिक विकास और बढ़ती आबादी जहां देश की अर्थव्यवस्था को आगे ले जा रही है, वहीं इसका असर जलवायु पर भी पड़ रहा है। एनवायरनमेंटल रिसर्च कम्युनिकेशन्स में प्रकाशित एक नए अध्ययन के अनुसार, 1750 से 2024 तक भारत के उत्सर्जन से दुनिया के औसत तापमान में करीब 0.05 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हुई है। अध्ययन में भारत को ऐतिहासिक रूप से दुनिया का पांचवां सबसे बड़ा गर्मी बढ़ाने वाला देश बताया गया है।

इस सूची में भारत से आगे अमेरिका, चीन, रूस और यूरोपीय संघ हैं। हालांकि भारत का कुल योगदान अमेरिका के मुकाबले काफी कम है। अमेरिका के कारण वैश्विक तापमान में करीब 0.27 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी का अनुमान है। लेकिन भारत के मामले में एक खास बात सामने आई है। देश के कुल तापमान प्रभाव का आधे से ज्यादा हिस्सा वर्ष 1990 के बाद सामने आया है। भारत में बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण, शहरीकरण और ऊर्जा की मांग पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ी है। बिजली उत्पादन, परिवहन और उद्योगों में कोयले और तेल जैसे जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल बढ़ने से कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन भी बढ़ा।

अध्ययन के अनुसार, भारत के तापमान प्रभाव में ऊर्जा क्षेत्र की हिस्सेदारी करीब 61 प्रतिशत है। इसका मुख्य कारण बिजली और परिवहन के लिए जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल है। आर्थिक विकास के साथ देश में बिजली की मांग लगातार बढ़ी है और इसका बड़ा हिस्सा अब भी कोयले से पूरा होता है। भारत के जलवायु प्रभाव की एक खास बात यह है कि इसमें खेती से निकलने वाली गैसों की भूमिका काफी बड़ी है। अध्ययन के अनुसार, भारत के कुल तापमान प्रभाव में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी करीब 28 प्रतिशत है। धान की खेती और पशुपालन से बड़ी मात्रा में मीथेन निकलती है। वहीं कृषि गतिविधियों से नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन भी होता है। ये दोनों गैसें वातावरण को गर्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मीथेन कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में कम समय तक

वातावरण में रहती है, लेकिन उस दौरान यह गर्मी को रोकने में काफी ज्यादा प्रभावी होती है। इसलिए भारत के लिए जलवायु नीति बनाते समय केवल कार्बन डाइऑक्साइड पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं होगा। यह अध्ययन क्रैनफील्ड यूनिवर्सिटी, ब्रिटेन और आईआईटी

खड़गपुर के शोधकर्ताओं ने किया है। वैज्ञानिकों ने फेयर मॉडल की मदद से 1750 से 2024 तक अलग-अलग ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव का अध्ययन किया। इसमें कार्बन डाइऑक्साइड के साथ मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड को भी शामिल किया गया। इससे भारत के जलवायु प्रभाव की अधिक व्यापक तस्वीर सामने आई। शोधकर्ताओं ने अलग-अलग समय को आधार बनाकर भी भारत की जिम्मेदारी का आकलन किया। इनमें 1750, 1947 और 1990 जैसे वर्ष शामिल थे। इससे यह समझने में मदद मिली कि ऐतिहासिक जिम्मेदारी का आकलन इस बात पर भी निर्भर करता है कि उत्सर्जन की गणना किस वर्ष से शुरू की जाती है। शोध में

भारत की सीमा के भीतर होने वाले उत्सर्जन को मुख्य आधार बनाया गया है। इसमें जंगलों, जमीन के इस्तेमाल में बदलाव और वनों द्वारा कार्बन सोखने जैसे पहलुओं को शामिल नहीं किया गया है। इसके अलावा 18वीं और 19वीं सदी के उत्सर्जन से जुड़े आंकड़े सीमित हैं। इसलिए पुराने आंकड़ों में कुछ अनिश्चितता भी है। इसे ध्यान में रखते हुए शोधकर्ताओं ने एक हजार से अधिक अलग-अलग सिमुलेशन किए और उनके आधार पर औसत अनुमान तैयार किया। कोयले पर निर्भरता कम करना और सौर तथा अन्य स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों को बढ़ाना एक बड़ी प्राथमिकता होगी। साथ ही, पशुपालन और धान की खेती से मीथेन उत्सर्जन कम करने के तरीके अपनाने होंगे। पशुओं के चारे में सुधार और धान के खेतों में पानी के इस्तेमाल के तरीके बदलना इसमें मददगार हो सकता है। अध्ययन का संदेश साफ है कि जलवायु परिवर्तन की जिम्मेदारी केवल पुराने औद्योगिक देशों तक सीमित नहीं है। भारत जैसे तेजी से विकसित होते देशों की भूमिका भी अब महत्वपूर्ण हो गई है। इसलिए आर्थिक विकास के साथ पर्यावरण की सुरक्षा को संतुलित करना आने वाले वर्षों की सबसे बड़ी चुनौती होगी।

अन्नदाताओं को दी जा रही हैं आवश्यक सुविधाएं - मुख्यमंत्री डॉ. यादव

भोपाल मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि धरती पुत्र परिश्रम से फसल उगाते हैं, जो सभी को उपलब्ध होता है। अन्नदाता किसानों की समस्याओं को दूर कर उन्हें सभी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करवाई जा रही हैं। मुख्यमंत्री डॉ. यादव नई दिल्ली प्रवास के दौरान बलराम कृषि महोत्सव छतरपुर में वर्चुअल रूप से जुड़कर संबोधित कर रहे थे। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने प्रगतिशील किसानों से संवाद भी किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि बुंदेलखंड हीरों की धरती है। यहां की जमीन में हीरा निकलता है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने जिले में होने वाली पिपरमेंट की खेती का भी जिक्र किया। साथ ही फर्नीचर की क्वालिटी को बेहतर बताया। छतरपुर जिले के किसानों को रबी सीजन की फसलों की नवीनतम तकनीक, उन्नत कृषि पद्धतियों एवं आधुनिक कृषि संसाधनों की जानकारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से हुए बलराम कृषि महोत्सव के रूप में आयोजित किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ जनप्रतिनिधियों ने दीप जलाकर किया। छतरपुर में वन एवं पर्यावरण राज्यमंत्री श्री दिलीप अहिरवार, प्रशासक अपेक्स बैंक डॉ. महेन्द्र सिंह यादव,



प्रशासक सहकारिता श्री के.पी. सिंह, विधायक राजनगर श्री अरविंद पटेरिया उपस्थित थे। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा प्रारंभ की गई केन-बेतवा लिंक परियोजना की सराहना करते हुए कहा कि इस महत्वाकांक्षी परियोजना से बुंदेलखंड सहित संबंधित क्षेत्रों के किसानों को सिंचाई का भरपूर लाभ मिलेगा। उन्होंने कहा कि सिंचाई की सुविधा बढ़ने से कृषि क्षेत्र को नई गति मिलेगी और किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। मुख्यमंत्री ने आल्हा-ऊदल के प्रसंग का उल्लेख करते हुए बुंदेलखंड की वीरता और गौरवशाली परंपरा का वर्णन किया। उन्होंने किसानों एवं उपस्थित लोगों से सामाजिक आयोजनों में अनावश्यक खर्च कम करने तथा सामूहिक विवाह को बढ़ावा देने की अपील की। मुख्यमंत्री डॉ. यादव को किसानों ने कृषि क्षेत्र के नवाचारों की जानकारी दी। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने छतरपुर जिले के प्रगतिशील किसान श्री सलीम खान से संवाद किया। श्री सलीम ने जैविक एवं प्राकृतिक खेती के साथ होलेस्टिक फार्मिंग एवं औषधीय फसल उत्पादन एवं कृषि के साथ अन्य कृषकों को प्राकृतिक खेती के लिए प्रोत्साहित करने के संबंध में मुख्यमंत्री डॉ. यादव को जानकारी दी।

क्या सिलिका धूल बन रही मौत का कारण-एनजीटी ने दिए झाबुआ में फैक्ट्री की जांच के आदेश?

मेघनगर मध्य प्रदेश के झाबुआ स्थित मेघनगर औद्योगिक क्षेत्र की एक क्वार्ट्ज ग्राइंडिंग फैक्ट्री से कथित सिलिका धूल के लगातार फैलने की शिकायत पर एनजीटी ने सख्त रुख अपनाया है। ट्रिब्यूनल ने प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, जिला प्रशासन और खनन विभाग को संयुक्त निरीक्षण कर पर्यावरणीय नियमों के पालन की जांच करने और उल्लंघन मिलने पर कार्रवाई के निर्देश दिए हैं। शिकायतकर्ताओं का आरोप है कि पहले भी निरीक्षण के बाद फैक्ट्री बंद की गई थी, लेकिन कुछ समय बाद उसने दोबारा काम शुरू कर दिया और धूल का उत्सर्जन बढ़ गया।

चिंता इसलिए भी गंभीर है क्योंकि सिलिका की महीन धूल लंबे समय तक सांस के साथ शरीर में जाने पर सिलिकोसिस जैसी गंभीर और लाइलाज बीमारी का कारण बन सकती है। आईसीएमएआर के अनुसार, देश में करीब 30 लाख श्रमिकों पर सिलिकोसिस का गंभीर खतरा मंडरा रहा है। ऐसे में एनजीटी का ताजा आदेश ऐसे लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है। मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के मेघनगर औद्योगिक क्षेत्र में एक फैक्ट्री से कथित तौर पर लगातार फैल रही सिलिका युक्त धूल को लेकर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने कड़ा रुख अपनाया है। ट्रिब्यूनल ने इस मामले में मध्य प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, झाबुआ कलेक्टर ऑफिस और खनन विभाग को संयुक्त रूप से फैक्ट्री का निरीक्षण करने और पर्यावरणीय नियमों के उल्लंघन की स्थिति में जरूरी कार्रवाई करने के निर्देश दिए हैं। यह आदेश 9 सितंबर 2026 को दिए गए हैं। एनजीटी ने कहा कि यदि निरीक्षण में पर्यावरण संबंधी नियमों का उल्लंघन पाया जाता है, तो इसके सुधार के लिए तत्काल कदम उठाए जाएं। साथ ही नियमों का पालन नहीं होने की स्थिति में मध्य प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को तीन महीने के भीतर ट्रिब्यूनल के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करनी होगी। यह मामला राष्ट्रीय आदिवासी क्रांति सेना की ओर से 29 जून 2026 को दायर पत्र याचिका के जरिए एनजीटी के सामने पहुंचा। शिकायत में बताया गया कि मेघनगर औद्योगिक क्षेत्र में %समृद्धा माईस एंड मिनरल्स% नाम से क्वार्ट्ज यानी सिलिका की ग्राइंडिंग फैक्ट्री चल रही है। गौरतलब है कि सिलिका धूल लंबे समय तक सांस के जरिए शरीर में जाने पर सिलिकोसिस जैसी गंभीर और लाइलाज व्यावसायिक बीमारी का कारण बन सकती है। शिकायतकर्ताओं के अनुसार, इलाके में कई श्रमिक इस बीमारी की चपेट में आ चुके हैं और कुछ लोगों की मौत भी हुई है। ग्रामीणों ने इस समस्या को लेकर कई बार शिकायतें कीं। मामला स्थानीय अखबारों में भी सामने आया। इसके बाद मध्य प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने फैक्ट्री का निरीक्षण किया और कथित पर्यावरणीय उल्लंघन पाए जाने पर उद्योग को बंद करने का आदेश दिया था। लेकिन शिकायतकर्ताओं का आरोप है कि कुछ समय बाद फैक्ट्री ने दोबारा काम शुरू कर दिया। इतना ही नहीं, अब पहले से भी अधिक मात्रा में सिलिका धूल फैलने की बात कही गई है। शिकायत के साथ ऐसी तस्वीरें भी पेश की गई हैं, जिनमें फैक्ट्री से धूल के लगातार उत्सर्जन का दावा किया गया है। अब एनजीटी के निर्देश के बाद संबंधित विभागों की जांच यह तय करेगी कि फैक्ट्री पर्यावरणीय मानकों का पालन कर रही है या नहीं। बता दें कि देश में सिलिकोसिस पीड़ितों का सही आंकड़ा क्या है इसका सटीक तौर पर तो अंदाजा नहीं है, लेकिन आईसीएमएआर ने अपनी एक रिपोर्ट में जानकारी दी है कि देश में तीस लाख श्रमिकों पर सिलिकोसिस का जोखिम बहुत ज्यादा है। इस मामले की गंभीरता केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं है। सिलिका की महीन धूल के बीच काम करने वाले श्रमिकों और आसपास रहने वाले लोगों के लिए यह सीधे उनके फेफड़ों और जीवन का सवाल है। एनजीटी का ताजा आदेश ऐसे लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है।

तंबाकू के धुएं की चपेट में भारत का हर तीसरा व्यक्ति, साल में 3.25 लाख मौतें

नई दिल्ली भारत में धूम्रपान करने वाला व्यक्ति अकेला नहीं होता जो सिगरेट या बीड़ी के धुएं का नुकसान झेलता है। उसके आसपास सांस लेने वाले करोड़ों लोग भी इस जहरीले धुएं की कीमत चुकाते हैं। इनमें महिलाएं, बच्चे और परिवार के दूसरे सदस्य शामिल हैं, जो भले ही खुद धूम्रपान नहीं करते, फिर भी इस धुएं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों से बच नहीं पाते। द लैंसेट पब्लिक हेल्थ में प्रकाशित एक वैश्विक अध्ययन में खुलासा हुआ है कि, 2023 के दौरान भारत में 44.4 करोड़ लोग सेकेंड-हैंड स्मोक यानी दूसरे के तंबाकू के धुएं के संपर्क में थे। 1990 में यह आंकड़ा 37.5 करोड़ था। यानी गत 33 वर्षों में ऐसे लोगों की संख्या 18.4 फीसदी बढ़ी है।

इस अध्ययन में 204 देशों और क्षेत्रों में 1990 से 2023 के बीच सेकेंड-हैंड स्मोक के संपर्क में आए लोगों, और उससे होने वाली बीमारियों और मौतों का आकलन किया गया है। किड़ों के मुताबिक, 2023 में सेकेंड-हैंड स्मोक के संपर्क में आने वालों में 21.4 करोड़ महिलाएं और 23 करोड़ पुरुष थे। वहीं 1990 में यह संख्या क्रमशः 20.1 करोड़ और 17.4 करोड़ दर्ज की गई थी। मतलब की इस दौरान महिलाओं में सेकेंड-हैंड स्मोक के संपर्क में आने वाली आबादी 6.8 फीसदी बढ़ी, जबकि पुरुषों में यह बढ़ोतरी 31.7 फीसदी दर्ज की गई। भारत में सेकेंड-हैंड स्मोक के संपर्क में आने वालों की जो प्रसार दर 1990 में 43.2 फीसदी थी, जो 2023 में घटकर 30.6 फीसदी रह गई। यानी इसमें 29 फीसदी की कमी आई है। महिलाओं की बात करें तो यह दर 49.2 फीसदी से घटकर 30.3 फीसदी रह गई, यानी इसमें 38.4 फीसदी की गिरावट आई है। हालांकि इसके बावजूद इस धुएं के संपर्क में आने वाले लोगों की वास्तविक संख्या बढ़ी है। इसकी बड़ी वजह भारत की बढ़ती आबादी है। इसलिए केवल प्रतिशत में आई गिरावट को देखकर यह मान लेना सही नहीं होगा कि पैसिव स्मोकिंग की समस्या खत्म हो रही है। देखा जाए तो आज 44.4 करोड़ लोगों का सेकेंड-हैंड स्मोक के संपर्क में होना यह दर्शाता है कि खतरा अभी भी बेहद बड़ा है। आंकड़े दर्शाते हैं कि सेकेंड-हैंड स्मोक का यह संपर्क केवल एक जोखिम नहीं, बल्कि जानलेवा भी हो सकता है। अध्ययन के अनुसार, 2023 में भारत में 3.26 लाख मौतें सेकेंड-हैंड स्मोक के कारण हुईं। वहीं 1990 में ऐसी मौतों का आंकड़ा करीब 2.18 लाख था। यानी तीन दशकों में मौतों की संख्या 49.6 फीसदी बढ़ी है। महिलाओं और पुरुषों के लिहाज से

देखें तो 2023 में इन मौतों में महिलाओं की संख्या करीब 1.57 लाख थी, जबकि पुरुषों में करीब 1.69 लाख दर्ज की गई। ऐसे में यदि 1990 से तुलना करें तो महिलाओं में सेकेंड-हैंड स्मोक से जुड़ी मौतों में 38.4 फीसदी और पुरुषों में 61.7 फीसदी की वृद्धि हुई है, जोकि बेहद चिंताजनक है। यह अंतर एक महत्वपूर्ण सवाल उठाता है, जब भारत में महिलाएं खुद कम धूम्रपान करती हैं, तब भी वे तंबाकू के धुएं से इतनी बड़ी संख्या में प्रभावित क्यों हो रही हैं? इसका एक कारण घर और सामाजिक वातावरण में दूसरों के धूम्रपान से होने वाला लगातार संपर्क हो सकता है। भारत में प्रति लाख आबादी पर सेकेंड-हैंड स्मोक से जुड़ी मृत्यु दर 1990 में 46.1 थी, जो 2023 में घटकर 30 रह गई। यानी मृत्यु दर में करीब 35 फीसदी की गिरावट आई। इसी दौरान महिलाओं में यह दर 47.9 से घटकर 27.2 हुई, जबकि पुरुषों में 44.3 से घटकर 33.4 हो गई थी। लेकिन यहां भी वही विरोधाभास सामने आता है, मृत्यु दर तो कम हुई, लेकिन कुल मौतों की संख्या बढ़ गई है। आंकड़े दर्शाते हैं कि सेकेंड-हैंड स्मोक का यह संपर्क केवल एक जोखिम नहीं, बल्कि जानलेवा भी हो सकता है। सरल शब्दों में समझें तो इसका अर्थ है कि आबादी बढ़ने के कारण जोखिम में रहने वाले लोगों की कुल संख्या अभी भी इतनी बड़ी है कि बीमारी और मौतों का वास्तविक बोझ कम नहीं हुआ है। रिपोर्ट दर्शाती है सेकेंड-हैंड स्मोक का नुकसान केवल मौतों तक सीमित नहीं है। इससे लोग बीमारी और विकलांगता के साथ जीवन जीने को भी मजबूर हो रहे हैं। अध्ययन में इसका आकलन विकलांगता-समायोजित जीवन वर्ष (डीएएलवाई) के जरिए किया गया है। यह किसी बीमारी के कारण समय से पहले हुई मौत और बीमारी या विकलांगता के साथ बिताए गए जीवन, दोनों को मिलाकर स्वास्थ्य को हुए कुल नुकसान को बताता है। भारत में सेकेंड-हैंड स्मोक की वजह से 2023 के दौरान 92.84 लाख स्वस्थ जीवन वर्षों का नुकसान हुआ।

क्रूज जहाजों के प्रदूषण से बढ़ सकता है वायरल संक्रमण, फेफड़ों की कोशिकाओं पर पड़ता है असर- रिसर्च



नई दिल्ली। समुद्र के किनारे खड़ा एक विशाल क्रूज जहाज बाहर से जितना खूबसूरत दिखाई देता है, उसके धुएँ का असर आसपास रहने वाले लोगों के लिए उतना ही चिंताजनक हो सकता है। एक नई स्टडी में सामने आया है कि क्रूज जहाजों से निकलने वाले प्रदूषण के बेहद महीन कण फेफड़ों में सूजन को बढ़ा सकते हैं और शरीर की वायरस का सामना करने की क्षमता को कमजोर कर सकते हैं। इससे सर्दी-जुकाम और कोविड-19 जैसे वायरल संक्रमणों का खतरा बढ़ने की आशंका है।

इसे समझने के लिए यूनिवर्सिटी ऑफ साउथैम्प्टन से जुड़े वैज्ञानिकों के नेतृत्व में शोधकर्ताओं ने ब्रिटेन के साउथैम्प्टन बंदरगाह की हवा का अध्ययन किया। अध्ययन के दौरान इस क्षेत्र की हवा में प्रदूषण के बेहद महीन कण यानी अल्ट्राफाइन पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) पाए गए। ये कण इंसानी बाल की चौड़ाई के एक हजारवें हिस्से से भी महीन होते हैं। साथ ही इन कणों में जहाजों के ईंधन के जलने से पैदा होने वाले वैसे ही धातु तत्व भी पाए गए। शोधकर्ताओं के मुताबिक, ये बेहद महीन कण फेफड़ों में सामान्य बड़े प्रदूषक कणों की तुलना में कहीं अधिक गहराई तक पहुंच सकते हैं। यहां तक कि इनके रक्त में प्रवेश करने की भी आशंका है। इस अध्ययन के नतीजे प्रतिष्ठित जर्नल एनवायरमेंट इंटरनेशनल में प्रकाशित हुए हैं। इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पहली बार किसी व्यस्त बंदरगाह में मौजूद सूक्ष्म कणों की संरचना और उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर की विस्तृत जांच की है। इसके लिए साउथैम्प्टन बंदरगाह के आसपास पांच जगहों से हवा के नमूने लिए गए। इनमें भारी वाहनों की आवाजाही वाला डॉक गेट, कंटेनर जहाजों की आवाजाही वाला टर्मिनल और व्यस्त क्रूज टर्मिनल शामिल थे। तुलना के लिए बंदरगाह से करीब पांच किलोमीटर दूर एक अन्य जगह से भी हवा के नमूने लिए गए। ये सभी नमूने गर्मियों और सर्दियों, दोनों मौसमों में लिए गए। रिसर्च में क्रूज टर्मिनल पर गर्मियों के व्यस्त मौसम में वैसे ही धातु तत्वों की मात्रा सर्दियों की तुलना में अधिक मिली। बंदरगाह के अधिकांश हिस्सों में भी इन तत्वों का स्तर बंदरगाह से करीब पांच किलोमीटर दूर लिए नमूनों की तुलना में ज्यादा था। अध्ययन में यह भी सामने आया कि जब हवा क्रूज जहाजों की दिशा से चल रही थी और बंदरगाह में अधिक क्रूज मौजूद थे, तब इन प्रदूषक तत्वों का स्तर भी बढ़ गया। यूनिवर्सिटी ऑफ साउथैम्प्टन और अध्ययन से जुड़ी प्रमुख शोधकर्ता डॉक्टर नैट ईस्टन के मुताबिक, क्रूज टर्मिनल पर प्रदूषण की अधिक मात्रा की एक वजह यह हो सकती है कि बंदरगाह में खड़े क्रूज जहाजों के इंजन यांत्रियों के लिए गर्मी, गर्म पानी, रोशनी और खाना पकाने जैसी जरूरतों को पूरा करने के लिए चलते रहते हैं।

शोधकर्ताओं ने प्रयोगशाला में फेफड़ों की अंदरूनी परत बनाने वाली कोशिकाओं पर इन अल्ट्राफाइन कणों के असर का भी अध्ययन किया है। इससे पता चला कि गर्मियों में क्रूज टर्मिनल से लिए गए प्रदूषण के नमूनों के संपर्क में आने पर कोशिकाओं में सूजन से जुड़े जीन

अधिक सक्रिय हो गए। इसके उलट, वायरस से लड़ने वाली कोशिकाओं की क्षमता से जुड़े जीन की सक्रियता कम हो गई। यानी प्रदूषण के संपर्क में आने के बाद फेफड़ों की कोशिकाएं एक तरफ सूजन की स्थिति पैदा हो रही थीं, वहीं दूसरी तरफ वायरस से बचाव की उनकी क्षमता कमजोर पड़ रही थी। आगे के परीक्षणों में शोधकर्ताओं ने पाया कि इसमें वैसे ही धातु तत्वों की अहम भूमिका हो सकती है। इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए शोधकर्ताओं ने स्वस्थ लोगों के फेफड़ों से ली गई ब्रोंकियल (श्वसन नली) की कोशिकाओं को इंसानों में पाए जाने वाले राइनोवायरस से संक्रमित किया। बता दें कि यही वायरस सर्दी-जुकाम का कारण बनता है और अस्थमा के अटैक के बाद अस्पताल में भर्ती होने के प्रमुख कारणों में से एक है। इसके अलावा, वैज्ञानिकों ने कोविड-19 कोरोना वायरस संक्रमण के एक मॉडल की भी मदद ली है। जब इन कोशिकाओं को वैसे ही धातु तत्वों के संपर्क में रखा गया, तो दोनों वायरस की प्रतिकृतियों यानी उनकी संख्या में बढ़ोतरी देखी गई। शोधकर्ताओं के मुताबिक, इससे संकेत मिलता है कि वैसे ही धातु तत्वों की कोशिकाओं की वायरस को बढ़ने से रोकने की क्षमता को कमजोर कर सकता है। इसका संक्रमण की गंभीरता और उसके प्रसार पर असर पड़ सकता है। ध्यान के वरिष्ठ लेखक और यूनिवर्सिटी ऑफ साउथैम्प्टन में रेस्पिरैटरी बायोलॉजी एंड टॉक्सिकोलॉजी के प्रोफेसर मैथ्यू लॉक्सहैम के मुताबिक, जब कच्चे तेल को रिफाइन किया जाता है, तो उसमें प्राकृतिक रूप से मौजूद वैसे ही धातु तत्वों में अधिक मात्रा में जमा हो जाता है, क्योंकि पेट्रोल और केरोसिन को अलग कर दिया जाता है। कई जहाजों में इस्तेमाल होने वाले इस भारी ईंधन को जलाने पर वैसे ही धातु तत्वों का कुछ हिस्सा वाष्प में बदल जाता है और धुएँ के साथ बाहर निकलकर हवा में मिल जाता है। शोधकर्ता डॉक्टर नैट ईस्टन ने प्रेस विज्ञप्ति में बताया है कि क्रूज जहाजों से जुड़े कणों में वैसे ही धातु तत्वों और निकेल की मात्रा कंटेनर जहाजों से जुड़े कणों की तुलना में काफी अधिक थी। अध्ययन में खुलासा हुआ है कि अकेले साउथैम्प्टन में 2025 के दौरान 25 लाख से अधिक क्रूज यात्री पहुंचे थे। यह ब्रिटेन का प्रमुख वाहन और गहरे समुद्री व्यापार वाला बंदरगाह भी है। यानी यहां जहाजों की आवाजाही और उनसे जुड़े प्रदूषण का सामना एक बड़ी आबादी करती है। एक अन्य अध्ययन में सामने आया है कि दुनिया भर में इंसानों द्वारा किए जा रहे ग्रीनहाउस गैसों के करीब 3 फीसदी हिस्से के लिए शिपिंग जिम्मेवार है। इसके बारे में अनुमान है कि 2050 तक उसमें 50 फीसदी का इजाफा हो सकता है। हालांकि इसके बावजूद अभी भी इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा। यही नहीं शिपिंग के कारण पैदा होने वाले अन्य प्रदूषक जैसे नाइट्रोजन और सल्फर ऑक्साइड भी स्वास्थ्य के लिए बड़ा खतरा हैं। ये प्रदूषक हवा की गुणवत्ता को इतना कम कर देते हैं, जिससे असमय मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि बंदरगाहों के आसपास रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए जहाजों से होने वाले उत्सर्जन को कम करना जरूरी है। इसके लिए बंदरगाह पर जहाजों को अपने इंजन बंद करके, बिजली के साफ-सुथरे स्रोतों, कम प्रदूषण पैदा करने वाले वैकल्पिक ईंधन और उत्सर्जन नियंत्रण की बेहतर तकनीकों को बढ़ावा देने की जरूरत है। साथ ही, अल्ट्राफाइन पार्टिकुलेट मैटर और उनमें मौजूद धातु तत्वों की नियमित निगरानी भी जरूरी है। फिलहाल ऐसे बेहद महीन कणों और उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों की पर्याप्त निगरानी नहीं होती। हमें समझना होगा कि जहाजों से निकलता धुआं सिर्फ बंदरगाह के ऊपर उठता बादल नहीं है। इसमें मौजूद प्रदूषण के बेहद महीन कण सांसों के साथ फेफड़ों तक पहुंचकर शरीर की वायरस से लड़ने की क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसे में समुद्र के किनारे रहने वाले लोगों के लिए साफ हवा केवल पर्यावरण से जुड़ा मुद्दा नहीं, बल्कि स्वस्थ सांस और संक्रमण से बचाव का सवाल भी है।

सुपरमैसिव ब्लैक होल ने अचानक दिखाई जबरदस्त सक्रियता

वाशिंगटन। हाल ही में अंतरिक्ष में एक सुपरमैसिव ब्लैक होल ने अचानक जबरदस्त सक्रियता दिखाई है। अंतरिक्ष में करीब दो दशक से शांत दिखाई दे रहे इस ब्लैक होल में भयंकर विस्फोट होता दिखाई दिया। इससे खगोल वैज्ञानिक भी अचंभित हैं। नासा के स्विफ्ट एक्स-रे टेलीस्कोप से मिले करीब 20 साल के आंकड़ों के विश्लेषण में वैज्ञानिकों ने पर्सियस क्लस्टर के केंद्र में स्थित ब्लैक होल से अब तक का सबसे बड़ा एक्स-रे फ्लेयर दर्ज किया है। यह ब्लैक होल एनजीसी 1275 गैलेक्सी के केंद्र में मौजूद है, जो पर्सियस क्लस्टर की सबसे चमकीली आकाशगंगाओं में शामिल है। इस घटना के करीब 300 दिन बाद शक्तिशाली रेडियो उत्सर्जन भी दर्ज किया गया। यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन की सारा केचम और उनकी टीम ने इस घटना का अध्ययन किया है। वैज्ञानिकों के मुताबिक यह खोज ब्लैक होल की एक्शन डिस्क और उससे निकलने वाले जेट के बीच संबंध को समझने में महत्वपूर्ण जानकारी दे सकती है।

जलवायु में बदलाव के बीच सूती कपड़ों से सामने आया जमीन की सेहत का राज

स्विट्जरलैंड सूती कपड़ों से मिट्टी की जांच, बगीचों की जमीन सबसे सक्रिय, लॉन की मिट्टी सबसे शांत मिली, यह पानी को संभालती है, कार्बन जमा करती है व कई जरूरी पोषक तत्वों को बनाए रखती है। स्विट्जरलैंड में वैज्ञानिकों ने मिट्टी की जैविक गतिविधि जांचने के लिए हजारों सूती कपड़े जमीन में दबाए।

अध्ययन में बगीचों की मिट्टी सबसे ज्यादा सक्रिय मिली, जहां सूती कपड़े अन्य स्थानों की तुलना में तेजी से गले। लॉन की मिट्टी में जैविक गतिविधि सबसे कम रही, जबकि खेत और घास के मैदान बीच की स्थिति में पाए गए। जमीन के इस्तेमाल का मिट्टी की सेहत पर सबसे बड़ा असर दिखा, जबकि तापमान और नमी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वैज्ञानिकों ने मिट्टी की गतिविधि समझने के लिए कपड़े का इंडेक्स प्रस्तावित किया, जिससे आम लोग मिट्टी को आसानी समझ सकें। स्विट्जरलैंड में वैज्ञानिकों ने मिट्टी की सेहत और उसमें मौजूद जीवों की गतिविधि को समझने के लिए एक अनोखा प्रयोग किया। इसके लिए उन्होंने देशभर की अलग-अलग जगहों पर हजारों जोड़ी सूती कपड़े जमीन में दबाए। करीब दो महीने बाद इन्हें बाहर निकाला गया और देखा गया कि वे कितनी तेजी से गल चुके हैं। इस प्रयोग से वैज्ञानिकों को मिट्टी में मौजूद जीवों की गतिविधि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिली। प्लांट्स, पीपल, प्लैनेट पत्रिका में प्रकाशित इस अध्ययन में सामने आया कि अलग-अलग तरह की जमीन में सूती कपड़े के गलने की गति काफी अलग थी। सबसे ज्यादा सक्रिय मिट्टी निजी बगीचों में मिली, जबकि घास वाले मैदान यानी लॉन में मिट्टी की जैविक गतिविधि सबसे कम थी। यह अनोखा प्रयोग साल 2021 में ज्यूरिख विश्वविद्यालय और स्विट्जरलैंड के कृषि अनुसंधान केंद्र एग्रोस्कोप ने शुरू किया था। इसे 'फ्रूफ बाय अंडरपैट्स' नाम दिया गया। इस परियोजना में करीब 1,000 आम लोगों ने हिस्सा लिया। उन्होंने स्विट्जरलैंड की लगभग 1,000 जगहों पर 2,000 से ज्यादा जोड़ी सूती कपड़ा जमीन में दबाए। इसके अलावा करीब 12,000 टी बैग भी जमीन में दबाए गए। दो महीने बाद लोगों ने इन कपड़ों और टी बैग को जमीन से निकाला। उनकी तस्वीरें ली गईं और मिट्टी के नमूनों के साथ वैज्ञानिकों को भेजा गया। इस तरह वैज्ञानिकों को देश के अलग-अलग हिस्सों की मिट्टी के बारे में बड़े स्तर पर जानकारी मिली। वैज्ञानिकों ने पाया कि जिन जगहों की मिट्टी में जीवाणु, फंगस, केंचुए और दूसरे छोटे जीव ज्यादा सक्रिय थे, वहां सूती कपड़े तेजी से गल गए। इसके उलट कम सक्रिय मिट्टी में कपड़ा काफी हद तक बचा रहा। बगीचों की मिट्टी में कपड़ा सबसे तेजी से खराब हुआ। इन जगहों की मिट्टी में जैविक पदार्थ भी ज्यादा पाया गया। जैविक पदार्थ मिट्टी में रहने वाले कई जीवों के लिए भोजन और रहने की अच्छी स्थिति बनाता है। इसके विपरीत लॉन की मिट्टी में कपड़ा सबसे धीमी गति से टूटा। खेतों और घास के प्राकृतिक मैदानों में मिट्टी की गतिविधि इन दोनों के बीच रही।

शोधकर्ताओं के अनुसार, जमीन का इस्तेमाल किस तरह किया जाता है, साथ जलवायु परिवर्तन, बढ़ती गर्मी आदि का मिट्टी की सेहत पर बड़ा असर पड़ता है। बगीचे, खेत, घास के मैदान और लॉन में मिट्टी की स्थिति अलग-अलग मिली। शोध पत्र में शोधकर्ता के हवाले से कहा गया है कि मिट्टी का सही तरीके से प्रबंधन करने से मिट्टी में रहने वाले जीवों और उसकी गुणवत्ता पर अच्छा असर पड़ सकता है। स्वस्थ मिट्टी खेती, पौधों की वृद्धि और पोषक तत्वों के चक्र के लिए बहुत जरूरी है। अध्ययन में बगीचों की मिट्टी सबसे ज्यादा सक्रिय मिली, जहां सूती कपड़े अन्य स्थानों की तुलना में तेजी से गले। मिट्टी को स्वस्थ रखने के लिए जमीन को लंबे समय तक खुला नहीं छोड़ना, उसमें जैविक खाद या कंपोस्ट डालना, अलग-अलग फसलें उगाना और जरूरत से ज्यादा रासायनिक खाद तथा कीटनाशकों का इस्तेमाल कम करना मददगार हो सकता है। हालांकि वैज्ञानिकों ने यह भी बताया कि कपड़े का बहुत तेजी से गलना हर जगह अच्छी मिट्टी का संकेत नहीं है। बगीचों में भी अगर कपड़ा बहुत तेजी से गल रहा है, तो इसका मतलब यह हो सकता है कि मिट्टी में जरूरत से ज्यादा खाद डाली गई है। ऐसी स्थिति में खाद का इस्तेमाल कम करना बेहतर हो सकता है। मिट्टी की गतिविधि पर तापमान और नमी का भी बड़ा असर पड़ता है। बहुत ठंडी या बहुत सूखी मिट्टी में जीवों की गतिविधि काफी कम हो जाती है। इस प्रयोग के आधार पर वैज्ञानिकों ने मिट्टी की जैविक गतिविधि को समझने के लिए 'कपड़े का इंडेक्स' का विचार सामने रखा है। इसका उद्देश्य वैज्ञानिकों के साथ-साथ आम लोगों को भी यह समझाना है कि जमीन के नीचे क्या हो रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि मिट्टी केवल पौधों को उगाने वाली जमीन नहीं है। यह पानी को संभालती है, कार्बन जमा करती है और कई जरूरी पोषक तत्वों को बनाए रखती है। पृथ्वी की बड़ी मात्रा में जैव विविधता मिट्टी के नीचे मौजूद है। इस परियोजना ने यह भी दिखाया कि आम लोग वैज्ञानिक शोध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। करीब 1,000 जगहों से मिले आंकड़ों ने स्विट्जरलैंड की मिट्टी की जैविक गतिविधि की बड़ी तस्वीर सामने रखी। इस अध्ययन में करीब 240 नागरिकों को सह-लेखक के रूप में भी शामिल किया गया। वैज्ञानिकों ने प्रतिभागियों को उनकी मिट्टी के बारे में जानकारी और उसे बेहतर बनाने के सुझाव भी दिए। इस अनोखे प्रयोग का संदेश साफ है—मिट्टी भले ही हमारे पैरों के नीचे छिपी हो, लेकिन हमारे भोजन, पर्यावरण और भविष्य के लिए उसका स्वस्थ रहना बेहद जरूरी है।

प्रतिबंध के दशकों बाद भी यूरोप में कायम हैं खतरनाक रसायनों के निशान

यूरोप में प्रतिबंधित किए गए कुछ खतरनाक रसायन आज भी पर्यावरण में मौजूद हैं। एक नए अध्ययन में वैज्ञानिकों ने पाया है कि पॉलीब्रोमिनेटेड डाइफेनाइल ईथर्स यानी पीबीडीई (पीबीडीईएस) पर लंबे समय से लगे प्रतिबंधों के बावजूद इनके अवशेष हवा, पानी, मिट्टी, बर्फ, तलछट और सीवेज कीचड़ में पाए जा रहे हैं। शोधकर्ताओं ने यूरोप के 25 देशों से जुड़े अध्ययनों की समीक्षा की। यह अध्ययन जर्नल एनवायरनमेंटल रिसर्च में प्रकाशित किया गया है। इसमें 181 शोध अध्ययनों को शामिल किया गया। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन रसायनों का पर्यावरण में बने रहना बताता है कि किसी रसायन पर प्रतिबंध लगाना जरूरी है, लेकिन उससे पुराना प्रदूषण तुरंत खत्म नहीं होता। पीबीडीई का इस्तेमाल कई दशकों तक आग से सुरक्षा के लिए किया जाता था। इलेक्ट्रॉनिक सामान, कपड़े, प्लास्टिक, वाहन, फर्नीचर और निर्माण सामग्री में इन रसायनों का उपयोग आम था। इनका उद्देश्य आग लगने के खतरे को कम करना था। लेकिन समय के साथ वैज्ञानिकों ने इनके पर्यावरण और स्वास्थ्य पर संभावित प्रभावों को लेकर चिंता जताई। इसके बाद यूरोप सहित कई जगहों पर इनके उत्पादन और इस्तेमाल पर प्रतिबंध और कड़े नियंत्रण लागू किए गए। अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण बात यह सामने आई कि पानी में पीबीडीई की मात्रा आम तौर पर कम और अस्थायी होती है। इसके विपरीत नदियों और झीलों की तलछट, सीवेज कीचड़ और कुछ प्रकार की मिट्टी इन रसायनों को लंबे समय तक अपने अंदर रोककर रख सकती हैं। अध्ययन में बीडीई-209 नामक पीबीडीई की मौजूदगी खास तौर पर कणों वाली सामग्री, तलछट और सीवेज से जुड़े नमूनों में अधिक पाई गई। वहीं बीडीई-47 और बीडीई-99 जैसे कम ब्रोमीन वाले रसायन हवा और मिट्टी के नमूनों में अधिक दिखाई दिए। वैज्ञानिकों के लिए चिंता की एक बड़ी वजह यह भी है कि पीबीडीई केवल औद्योगिक या बड़े शहरों में ही नहीं मिले। इनके निशान यूरोप

के दूर-दराज और अपेक्षाकृत साफ माने जाने वाले इलाकों में भी मिले। अध्ययन में आर्कटिक और पहाड़ी क्षेत्रों जैसे दूरस्थ स्थानों में भी इन रसायनों की मौजूदगी सामने आई। शोधकर्ताओं के मुताबिक, इसका संबंध इन रसायनों की लंबे समय तक टिके रहने की क्षमता और हवा के जरिए दूर तक पहुंचने से हो सकता है। इससे पता चलता है कि पुराने रसायनों का असर केवल उस जगह तक सीमित नहीं रहता, जहां उनका इस्तेमाल हुआ था। अध्ययन ने यूरोप की सर्कुलर इकोनॉमी के सामने भी एक महत्वपूर्ण सवाल खड़ा किया है। पुरानी वस्तुओं को रिसाइकिल करके दोबारा इस्तेमाल करना पर्यावरण के लिए अच्छा कदम माना जाता है। लेकिन अगर उन पुराने सामानों में प्रतिबंधित रसायन मौजूद हैं, तो रिसाइक्लिंग के दौरान वे दोबारा नई सामग्री और उत्पादों में पहुंच सकते हैं। शोधकर्ताओं का कहना है कि रिसाइक्लिंग के साथ रासायनिक सुरक्षा पर भी ध्यान देना जरूरी है। केवल किसी रसायन के नए इस्तेमाल को रोकना पर्याप्त नहीं है। पुराने रसायनों की निगरानी भी लंबे समय तक करनी होगी। वैज्ञानिकों ने घरों, कार्यालयों, स्कूलों और कार्यस्थलों के अंदर मौजूद धूल और हवा पर भी ध्यान देने की जरूरत बताई है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों और पुराने फर्नीचर जैसी चीजों में इस्तेमाल किए गए रसायन समय के साथ घरेलू धूल में जमा हो सकते हैं। हालांकि यह अध्ययन सीधे तौर पर किसी खास बीमारी का कारण साबित नहीं करता, लेकिन शोधकर्ता मानते हैं कि पुराने रसायनों की लगातार मौजूदगी को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। शोधकर्ताओं का कहना है कि अब केवल एक देश, एक प्रकार के नमूने या एक रसायन की निगरानी पर्याप्त नहीं होगी। हवा, पानी, मिट्टी, तलछट और सीवेज जैसे अलग-अलग पर्यावरणीय हिस्सों को एक साथ देखना जरूरी है। पीबीडीई की कहानी यह साफ करती है कि किसी खतरनाक रसायन पर प्रतिबंध लगने के बाद भी उसकी विरासत दशकों तक बनी रह सकती है।